IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

उपनिषदों में धर्म की अवधारणा: ऋत, कर्म और मोक्ष के परिप्रेक्ष्य में एक दार्शनिक विश्लेषण

रवि कुमार

शोध छात्र

दर्शनशास्त्र विभाग

सम्राट पृथ्वीराज चौहान राजकीय महाविद्यालय, अजमेर, राजस्थान

प्रस्तावना

भारतीय दार्शनिक चिंतन के शिखर, उपनिषद, मानव अस्तित्व के गहनतम प्रश्नों का अन्वेषण करते हैं। उपनिषदों में 'धर्म' की अवधारणा एक केंद्रीय स्तंभ के रूप में स्थापित है, जो मात्र नैतिक नियमों या सामाजिक कर्तव्यों का संग्रह नहीं, अपितु एक गहन ब्रह्मांडीय और आध्यात्मिक सिद्धांत भी है। 'धर्म' शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत की 'धृ' धातु से हुई है। 'धृ' धातु धारण - पोषण और महत्व के अर्थ में प्रयुक्त होती है इसी धातु से धर्म शब्द निष्पादन हुआ है महत्त्वशील और धारक होने के कारण यह धर्म कहा जाता है।(मत्स्यपुराण १३४।१७) धर्म धारण करता है, अर्थात् अस्तित्व और आदर्श की रक्षा कर अधोगति से बचाता है, इसलिए उसे धर्म कहा गया है। धर्म ने ही सारी प्रजा को धारण कर रखा है। अतः जिससे धारण और पोषण सिद्ध होता हो, वही धर्म है; ऐसा सत्पुरुषों का निश्चय है।(महाभारत शान्तिपर्व १०९।११) संक्षेपत: धर्म वह तत्व है जो व्यक्ति, समाज और संपूर्ण ब्रह्मांड को एक सामंजस्यपूर्ण व्यवस्था में धारण करता है। यह शोध पत्र उपनिषदों में धर्म की इसी जटिल और बहुआयामी अवधारणा का अन्वेषण करेगा। इसका उद्देश्य धर्म को केवल नैतिक संहिताओं के रूप में नहीं, बल्कि एक ऐसे आध्यात्मिक और ब्रह्मांडीय सिद्धांत के रूप में प्रस्तुत करना है जो सीधे तौर पर आत्म-ज्ञान (आत्मन्) और अंतिम मुक्ति (मोक्ष) की प्राप्ति से जुड़ा हुआ है।

उपनिषदों में धर्म की अवधारणा का विकास वैदिक चिंतन की एक लंबी यात्रा का परिणाम है। प्रारंभिक वैदिक काल में, ब्रह्मांडीय व्यवस्था को 'ऋत' की अवधारणा के माध्यम से समझा जाता था। 'ऋत' वह अपरिहार्य, सार्वभौमिक नियम था जो ग्रहों की गति से लेकर ऋतुओं के चक्र और नैतिक व्यवस्था तक, सभी को नियंत्रित करता था। यह एक ऐसी बाहरी व्यवस्था थी जिसे देवताओं, विशेष रूप से वरुण द्वारा संरक्षित माना जाता था। इस व्यवस्था को बनाए रखने के लिए

यज्ञ जैसे कर्मकांडों को आवश्यक माना गया, जो वैदिक साहित्य के कर्मकांडीय भाग (ब्राह्मण ग्रंथ) का मुख्य विषय थे। उपनिषदों, जिन्हें 'वेदांत' (वेदों का अंत या सार) भी कहा जाता है, भारतीय चिंतन में एक महत्वपूर्ण वैचारिक बदलाव का प्रतीक है। यह बदलाव कर्मकांड (बाह्य अनुष्ठान) से ज्ञानकांड (आंतरिक बोध) की ओर एक यात्रा थी। उपनिषदों के ऋषियों ने बाहरी यज्ञों की दार्शनिक पुनर्व्याख्या की और उन्हें आंतरिक साधना के रूप में रूपांतरित कर दिया। इस प्रक्रिया में, 'ऋत' की अमूर्त और बाहरी अवधारणा 'धर्म' के रूप में विकसित हुई, जो अब अधिक व्यक्तिगत और आंतरिक हो गई थी। धर्म अब केवल एक ब्रह्मांडीय व्यवस्था नहीं था, बल्कि व्यक्ति के आंतरिक स्वभाव (स्वधर्म) और नैतिक आचरण से जुड़ गया, जिसका पालन आत्म-ज्ञान के लिए अनिवार्य माना गया। इस प्रकार, उपनिषदों में धर्म की प्रस्तुति कर्मकांड से ज्ञान की ओर एक महत्वपूर्ण दार्शनिक यात्रा को दर्शाती है, जहाँ 'सही कार्य' का अर्थ केवल अनुष्ठानिक शुद्धता नहीं, बल्कि 'सही ज्ञान' से प्रेरित नैतिक आचरण बन जाता है।

धर्म के विविध आयाम: ऋत, कर्म और पुरुषार्थ

उपनिषदों में धर्म की अवधारणा को उसके विभिन्न आयामों के माध्यम से समझा जा सकता है, जो ब्रह्मांडीय व्यवस्था से लेकर व्यक्तिगत आचरण तक विस्तृत हैं। ये आयाम धर्म को एक नैतिक नियम के रूप में नहीं, बल्कि एक एकीकृत जीवन-दर्शन के रूप में प्रस्तुत करते हैं, जो ऋत, कर्म और पुरुषार्थ के सिद्धांतों से गहराई से जुड़ा हुआ है।

ऋत: धर्म की ब्रह्मांडीय नींव

धर्म की उपनिषदिक अवधारणा की जड़ें वैदिक 'ऋत' में निहित हैं। ऋत को ब्रह्मांड के उस अपरिवर्तनीय भौतिक और नैतिक नियम के रूप में परिभाषित किया गया था, जिसके कारण ग्रह अपनी यात्रा करते हैं, ऋतुएं नियमित रूप से बदलती हैं, और ब्रह्मांड में एक व्यवस्था बनी रहती है। यह 'सत्य' और 'व्यवस्था' का सार्वभौमिक सिद्धांत था। उपनिषदों ने इस ब्रह्मांडीय सिद्धांत को व्यक्तिगत जीवन के स्तर पर उतारा। यहाँ, धर्म वह माध्यम बन गया जिसके द्वारा व्यक्ति अपने जीवन को इस ब्रह्मांडीय व्यवस्था (ऋत) के साथ संरेखित कर सकता है। धर्म का पालन करना ऋत के अनुसार जीना है। यह दर्शाता है कि नैतिकता कोई मनमाना सामाजिक निर्माण नहीं है, बल्कि यह ब्रह्मांड की आधारभूत संरचना में ही निहित है। जब व्यक्ति धर्मानुसार आचरण करता है, तो वह केवल एक सामाजिक नियम का पालन नहीं कर रहा होता, बल्कि वह ब्रह्मांडीय सामंजस्य में भाग ले रहा होता है। इस प्रकार, ऋत धर्म को एक वस्तुनिष्ठ और सार्वभौमिक आधार प्रदान करता है।

कर्म का सिद्धांत और धर्म

उपनिषदों ने कर्म के सिद्धांत को स्पष्ट रूप से स्थापित किया: शुभ कर्मों से पुण्य और अशुभ कर्मों से पाप का उदय होता है, और ये कर्म व्यक्ति के भविष्य को निर्धारित करते हैं। इस ढांचे में, धर्म का पालन ही शुभ कर्मों का आधार है। हालांकि, उपनिषद कर्म के इस सरल नियम से आगे जाते हैं और 'निष्काम कर्म' की गहन अवधारणा प्रस्तुत करते हैं, जिसे बाद में भगवद्गीता में और अधिक विस्तार दिया गया। निष्काम कर्म का अर्थ है फल की इच्छा के बिना, केवल अपने कर्तव्य के रूप में कर्म करना।

यह अवधारणा धर्म और कर्म के संबंध को एक नया आयाम देती है। सामान्यतः, इच्छा (काम) से प्रेरित और फल से जुड़ा हुआ कर्म बंधन का कारण बनता है। लेकिन जब वही कर्म धर्म के अनुसार (अर्थात्, नैतिक रूप से और अपने स्वधर्म के हिस्से के रूप में) और निष्काम भाव से किया जाता है, तो वह बंधन उत्पन्न नहीं करता। इसके विपरीत, ऐसा कर्म 'चित्त शुद्धि' (मन की शुद्धि) का कारण बनता है। यह शुद्धि व्यक्ति को अज्ञान और अहंकार से मुक्त करती है और उसे

आत्म-ज्ञान (ज्ञान) और अंतिम मुक्ति (मोक्ष) के लिए तैयार करती है। इस प्रकार, धर्म एक उत्प्रेरक के रूप में कार्य करता है जो कर्म की बंधनकारी प्रकृति को मोक्ष के साधन में बदल देता है। यह एक गहन आध्यात्मिक कीमिया है, जहाँ क्रिया का बाहरी रूप वही रहता है, लेकिन कर्ता की चेतना और इरादे में बदलाव के कारण उसका परिणाम पूरी तरह से बदल जाता है।

पुरुषार्थ चतुष्टय में धर्म का स्थान

हिन्दू दर्शन में जीवन के चार लक्ष्य निर्धारित किए गए हैं, जिन्हें 'पुरुषार्थ चतुष्टय' कहा जाता है: धर्म (नैतिक जीवन), अर्थ (भौतिक समृद्धि), काम (इच्छाओं की पूर्ति), और मोक्ष (आध्यात्मिक मुक्ति)। इन चारों में धर्म को आधारभूत माना गया है।(कूर्मपुराण पूर्व॰ २।४५) औपनिषदिक दृष्टिकोण यह स्पष्ट करता है कि अर्थ और काम का अनुसरण धर्म के नैतिक ढांचे के भीतर ही किया जाना चाहिए। धर्म के बिना, अर्थ केवल लोभ बनकर रह जाता है और काम अनियंत्रित वासना में बदल जाता है। धर्म इन दोनों को संतुलित करता है, उन्हें एक दिशा देता है और उन्हें जीवन के अंतिम लक्ष्य, मोक्ष, की ओर एक सीढ़ी बनाता है। यह एक ऐसी व्यवस्था है जिसमें भौतिक जीवन को आध्यात्मिक लक्ष्यों के विरुद्ध नहीं, बल्कि उनके सहायक के रूप में देखा जाता है, बशर्ते कि वह धर्म द्वारा निर्देशित हो।

प्रमुख उपनिषदों में धर्म की व्याख्या

उपनिषदों में धर्म की अवधारणा को किसी एक परिभाषा में नहीं बांधा गया है। विभिन्न उपनिषद अपने विशिष्ट दार्शनिक दृष्टिकोण के माध्यम से इसके अलग-अलग पहलुओं पर प्रकाश डालते हैं। बृहदारण्यक इसे परम सत्ता और सत्य से जोड़ता है, तो छान्दोग्य इसे सामाजिक कर्तव्यों के रूप में परिभाषित करता है। तैत्तिरीय इसे एक व्यावहारिक आचार संहिता के रूप में प्रस्तुत करता है, जबकि कठोपनिषद् इसे श्रेयस् (कल्याण) के मार्ग के रूप में देखता है।

बृहदारण्यक उपनिषद्: धर्म, सत्य और परम सत्ता

बृहदारण्यक उपनिषद्, जो अपने आकार और दार्शनिक गहराई दोनों में बृहत् है, धर्म को एक परम और सार्वभौम सिद्धांत के रूप में स्थापित करता है। इस उपनिषद् के प्रसिद्ध श्लोक १.४.१४ में धर्म के दो सबसे महत्वपूर्ण पहलुओं का अनावरण किया गया है।

'क्षत्रस्य क्षत्रं यद्धर्मः': यह घोषणा कि "धर्म क्षत्रिय का भी क्षत्रिय है" (अर्थात्, शासक की भी शक्ति है), धर्म को सर्वोच्च नियामक शक्ति के रूप में स्थापित करती है। इसका तात्पर्य है कि सांसारिक शक्ति, चाहे वह राजा की हो या किसी अन्य शासक की, धर्म के अधीन है। धर्म ही वह अंतिम विधान है जो शक्ति को नियंत्रित और निर्देशित करता है। उपनिषद आगे कहता है कि धर्म के बल पर ही एक निर्बल व्यक्ति भी एक बलवान व्यक्ति पर विजय पाने की आशा रखता है, ठीक वैसे ही जैसे कोई राजा की सहायता से अपने शत्रु पर विजय पाता है। यह दर्शाता है कि धर्म केवल एक नैतिक आदर्श नहीं, बल्कि एक व्यावहारिक शक्ति है जो सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था को न्यायपूर्ण बनाए रखती है।

'यो वै स धर्मः सत्यं वै तत्': यह समीकरण, "जो धर्म है, वही सत्य है," धर्म को एक निरपेक्ष, अपरिवर्तनीय वास्तविकता (सत्यम्) के साथ एकाकार कर देता है। यहाँ धर्म केवल एक सामाजिक परंपरा या नियम नहीं रह जाता, बल्कि वह अस्तित्व की प्रकृति के अनुरूप हो जाता है। सत्य बोलना धर्म का पालन करना है, और धर्म का आचरण करना सत्य में जीना है। ये दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। यह धर्म को एक वस्तुनिष्ठ और सार्वभौमिक आधार प्रदान करता है, जो व्यक्तिगत मत या सामाजिक सुविधा से परे है।

इसके अतिरिक्त, बृहदारण्यक उपनिषद् में वर्णित 'मधु विद्या'(बृहदारण्यक उपनिषद् २.५) भी धर्म की ब्रह्मांडीय प्रकृति

को दर्शाती है। मधु विद्या के अनुसार, इस ब्रह्मांड में सभी तत्व और सभी प्राणी एक-दूसरे के लिए 'मधु' (शहद) हैं, अर्थात वे एक-दूसरे का पोषण करते हैं और एक-दूसरे पर निर्भर हैं। यह ब्रह्मांडीय पारस्परिकता और सामंजस्य ही धर्म का सार है। धर्म का पालन करना इस ब्रह्मांडीय ताने-बाने के प्रति अपने दायित्व को समझना और उसके अनुसार आचरण करना है।

छान्दोग्य उपनिषद्: धर्म के तीन स्कंध

छान्दोग्य उपनिषद्, जो सामवेद से जुड़ा है और संगीत तथा उपासना पर केंद्रित है, धर्म को एक अधिक व्यावहारिक और सामाजिक संरचना के रूप में प्रस्तुत करता है। इसमें एक प्रसिद्ध कथन है: 'त्रयो धर्मस्कन्धाः'(छान्दोग्य उपनिषद् २.२३.१), अर्थात् "धर्म के तीन स्कंध (शाखाएं) हैं"।

1. **प्रथम स्कंध:** 'यज्ञोऽध्ययनं दानमिति प्रथमः' अर्थात् प्रथम स्कंध में यज्ञ, स्वाध्याय, और दान शामिल हैं। यह मुख्य रूप से गृहस्थ आश्रम के कर्तव्यों को दर्शाता है, जो सामाजिक व्यवस्था और परंपरा को बनाए रखने के लिए आवश्यक हैं।
2. **द्वितीय स्कंध:** 'तप एव द्वितीयो' अर्थात् तप द्वितीय स्कंध है। यह वानप्रस्थ आश्रम से जुड़ा है, जहाँ व्यक्ति इंद्रिय-संयम और ध्यान के माध्यम से आत्म-शुद्धि का प्रयास करता है।
3. **तृतीय स्कंध:** 'ब्रह्मचार्याचार्यकुलवासी तृतीयो ऽत्यन्तमात्मानमाचार्यकुलेऽवसादयन्' यह ब्रह्मचर्य आश्रम से जुड़ा हुआ है, जिसमें शिष्य गुरुकुल में रहकर वेदों का अध्ययन करता है और अपने शरीर को ज्ञान प्राप्ति के लिए समर्पित कर देता है।

यह वर्गीकरण विभिन्न आश्रमों के लिए निर्धारित कर्तव्यों को धर्म के अंतर्गत लाता है। लेकिन, उपनिषद यहीं नहीं रुकता। वह एक अत्यंत महत्वपूर्ण भेद प्रस्तुत करता है: "सर्व एते पुण्यलोका भवन्ति ब्रह्मसंस्थोऽमृतत्वमेति"। इसका अर्थ है कि उपरोक्त तीनों धर्म-स्कंधों का पालन करने वाले 'पुण्य लोक' (स्वर्ग आदि) को प्राप्त करते हैं, जो कि अस्थायी और कर्म के फल हैं। परन्तु, केवल 'ब्रह्मसंस्थ' - वह व्यक्ति जो ब्रह्म में दृढ़ता से स्थित है - ही अमृतत्व (अमरता या मोक्ष) को प्राप्त करता है।

यह श्लोक कर्मकांड और ज्ञानकांड के बीच के अंतर को स्पष्ट रूप से रेखांकित करता है। धर्म के इन तीन स्कंधों का पालन सामाजिक व्यवस्था और व्यक्तिगत पुण्य के लिए आवश्यक है, लेकिन वे स्वयं में अंतिम लक्ष्य नहीं हैं। वे मोक्ष का मार्ग प्रशस्त कर सकते हैं, पर मोक्ष की प्राप्ति केवल ब्रह्म-ज्ञान से ही संभव है। इस प्रकार, छान्दोग्य उपनिषद् धर्म को मोक्ष के एक महत्वपूर्ण साधन के रूप में स्थापित करता है, न कि स्वयं साध्य के रूप में।

तैत्तिरीय उपनिषद्: आचार संहिता के रूप में धर्म

तैत्तिरीय उपनिषद्, विशेष रूप से इसकी 'शिक्षावल्ली', धर्म को एक व्यावहारिक और नैतिक आचार संहिता के रूप में प्रस्तुत करती है। इसका ग्यारहवां अनुवाक एक प्रसिद्ध दीक्षांत उपदेश है, जिसमें गुरु गुरुकुल से विदा ले रहे शिष्य को गृहस्थ जीवन में प्रवेश के लिए निर्देश देते हैं। यह उपदेश 'सत्यं वद, धर्मं चर' ("सत्य बोलो, धर्म का आचरण करो") के प्रसिद्ध आह्वान से प्रारंभ होता है।(तैत्तिरीय उपनिषद् १.११.१)

यहाँ धर्म का अर्थ है - जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में अपने कर्तव्यों का निष्ठापूर्वक पालन करना। गुरु शिष्य को निर्देश देते हैं:

- **ज्ञान की खोज और उसके प्रसार को कभी न छोड़ें:** 'स्वाध्याय प्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्' यानी स्वाध्याय और प्रवचन से प्रमाद न करें।
- **देव और पितृ कार्यों में चूक न करें:** 'देवपितृकार्याभ्यां न प्रमदितव्यम्' यानी देवताओं और पूर्वजों के प्रति शास्त्रानुसार पूजा-उपासना और श्राद्ध-तर्पण आदि दायित्वों को पूरा करें।
- **सामाजिक और पारिवारिक कर्तव्य:** 'मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्यदेवो भव, अतिथिदेवो भव' का उपदेश माता, पिता, गुरु और अतिथि को देवता के समान सम्मान देने का निर्देश देता है।

अनिंद्य कर्मों का आचरण: 'यान्यनवद्यानि कर्माणि। तानि सेवितव्यानि। नो इतराणि।' केवल उन्हीं कर्मों का पालन करो जो निर्दोष और प्रशंसनीय हों, दूसरों का नहीं। इसके आगे कहते हैं कि यदि किसी कर्म या आचरण के विषय में संदेह हो, तो उस क्षेत्र के विचारशील, स्नेहमय और धर्मपरायण ब्राह्मणों (विद्वानों) के आचरण का अनुसरण करो।

इस उपदेश का उद्देश्य केवल सामाजिक सद्भाव बनाए रखना नहीं है। ये नैतिक कर्तव्य आत्म-ज्ञान की प्राप्ति के लिए मन को तैयार करने (चित्त शुद्धि) के साधन हैं। एक अनुशासित, सत्यनिष्ठ और कर्तव्यपरायण जीवन साधक को अहंकार और वासनाओं से मुक्त करता है, जिससे उसका मन उच्चतर आध्यात्मिक सत्य को ग्रहण करने के योग्य बनता है।

कठोपनिषद्: श्रेयस् और प्रेयस् का मार्ग

कठोपनिषद् यम और नचिकेता के संवाद के माध्यम से मृत्यु और अमरता के रहस्य का उद्घाटन करता है। इस संवाद के केंद्र में दो मार्गों का भेद है: 'श्रेयस्' (जो कल्याणकारी है) और 'प्रेयस्' (जो प्रिय लगता है)।

- **श्रेयस् बनाम प्रेयस्:** यमराज नचिकेता को समझाते हैं कि श्रेयस् और प्रेयस् दोनों मनुष्य के सामने आते हैं, लेकिन उनके लक्ष्य और परिणाम भिन्न होते हैं। प्रेयस् का मार्ग तात्कालिक इंद्रिय सुख, धन और सांसारिक सफलता की ओर ले जाता है। यह आकर्षक और लुभावना होता है, लेकिन अंततः व्यक्ति को उसके वास्तविक लक्ष्य से भटका देता है।(कठोपनिषद् १.२.१) श्रेयस् का मार्ग कठिन हो सकता है और तत्काल सुखद नहीं लग सकता, लेकिन यह स्थायी कल्याण, आत्म-ज्ञान और मोक्ष की ओर ले जाता है।
- **धर्म का मार्ग ही श्रेयस् का मार्ग है:** बुद्धिमान (धीरः) व्यक्ति दोनों का विश्लेषण करके प्रेयस् के ऊपर श्रेयस् को चुनता है, जबकि मंदबुद्धि व्यक्ति सांसारिक लाभ और सुरक्षा (योगक्षेम) के लिए प्रेयस् को चुनता है। श्रेयस् का मार्ग ही धर्म का मार्ग है, क्योंकि यह व्यक्ति को उसके परम कल्याण की ओर ले जाता है।(कठोपनिषद् १.२.२)
- **नचिकेता का चुनाव:** यमराज नचिकेता को सांसारिक सुखों के सभी प्रलोभन देते हैं - लंबी आयु, धन, राज्य, अप्सराएँ, आदि।(कठोपनिषद् १.१.२३-२५) लेकिन नचिकेता उन सभी को यह कहकर अस्वीकार कर देता है कि वे क्षणभंगुर हैं और इंद्रियों की शक्ति को क्षीण करते हैं। वह आत्म-ज्ञान के कठिन श्रेयस् मार्ग को चुनता है।(कठोपनिषद् १.१.२६-२९) उसका यह चुनाव धर्म के मार्ग का एक आदर्श उदाहरण है, जो दर्शाता है कि सच्चा धर्म तात्कालिक सुखों का त्याग करके शाश्वत सत्य की खोज करना है।

उपनिषद्	धर्म का मुख्य पहलू	संबंधित अवधारणाएं	अंतिम लक्ष्य
बृहदारण्यक	परम सत्ता, सत्य, ब्रह्मांडीय व्यवस्था	क्षत्रस्य क्षत्रं, सत्यं, मधु विद्या	सामाजिक और ब्रह्मांडीय न्याय
छान्दोग्य	सामाजिक और व्यक्तिगत कर्तव्य	यज्ञ, अध्ययन, दान, तप	पुण्य लोक (कर्मकांडी के लिए) / अमृतत्व (ज्ञानी के लिए)
तैत्तिरीय	नैतिक आचरण और अनुशासन	सत्यं वद, धर्मं चर, मातृदेवो भव	आत्म-ज्ञान के लिए चित्त शुद्धि
कठ	विवेकपूर्ण चुनाव और कल्याण का मार्ग	श्रेयस् बनाम प्रेयस्, आत्म-ज्ञान	मोक्ष (जन्म-मृत्यु से मुक्ति)

धर्म और मोक्ष: साधन और साध्य का संबंध

उपनिषदों का अंतिम लक्ष्य मोक्ष या जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्ति है। इस परिप्रेक्ष्य में, धर्म की भूमिका एक साधन के रूप में उभरती है जो इस परम साध्य की प्राप्ति के लिए मार्ग प्रशस्त करता है। धर्म का पालन अपने आप में अंतिम लक्ष्य नहीं है, बल्कि यह एक आवश्यक तैयारी है जो व्यक्ति को मोक्ष के योग्य बनाती है। यह संबंध स्वधर्म के पालन, यज्ञ की दार्शनिक पुनर्व्याख्या और धर्म संकट की नैतिक चुनौतियों के माध्यम से स्पष्ट होता है।

धर्म एक तैयारी के रूप में: स्वधर्म और चित्त शुद्धि

उपनिषद (और बाद में भगवद्गीता) 'स्वधर्म' की अवधारणा पर विशेष बल देते हैं। स्वधर्म का अर्थ है व्यक्ति का अपना वर्णाश्रम विहित स्वाभाविक कर्तव्य, जो उसके गुण और स्वभाव पर आधारित होता है। (श्रीमद्भगवद्गीता १८.४१) यह विचार इस मान्यता पर आधारित है कि प्रत्येक व्यक्ति की प्रकृति अद्वितीय होती है, जो तीन गुणों - सत्त्व (पवित्रता, ज्ञान), रजस् (क्रिया, जुनून), और तमस् (अज्ञान, जड़ता) - के विभिन्न अनुपातों से बनती है। व्यक्ति का स्वधर्म उसके गुणों की प्रबलता से निर्धारित होता है। उदाहरण के लिए, एक ज्ञानी और शांत व्यक्ति का धर्म (ब्राह्मण धर्म) ज्ञान और शिक्षण से जुड़ा हो सकता है, जबकि एक साहसी और सक्रिय व्यक्ति का धर्म (क्षत्रिय धर्म) रक्षा और शासन से। अपने स्वधर्म के द्वारा अपने वर्णाश्रम विहित कर्म से परमात्मा का पूजन करके मनुष्य सिद्धि को प्राप्त हो जाता है।(श्रीमद्भगवद्गीता १८.४५-४६)

अपने स्वधर्म का पालन करना अहंकार को कम करने और मन को शुद्ध करने का एक शक्तिशाली साधन है। जब व्यक्ति अपने स्वभाव के अनुरूप कार्य करता है, तो वह आंतरिक संघर्ष और असंतोष से बचता है। इससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि जब वह अपने कर्तव्य को फल की इच्छा के बिना (निष्काम कर्म) करता है(श्रीमद्भगवद्गीता २.४७), और आसक्ति का त्याग करके सिद्धि-असिद्धि में सम होकर समत्व रूपी योग में स्थित हुआ कर्मों को करता है।(श्रीमद्भगवद्गीता २.४८) इस प्रक्रिया से 'चित्त शुद्धि' होती है, अर्थात मन की शुद्धि होती है।(श्रीमद्भगवद्गीता ५.११) एक शुद्ध और शांत मन ही ब्रह्म के सत्य को ग्रहण करने में सक्षम होता है। इस प्रकार, स्वधर्म का पालन सत्त्व गुण को बढ़ाने और मोक्ष के

लिए आवश्यक मानसिक और आध्यात्मिक स्थिति बनाने का एक साधन है।

ज्ञानकांड और कर्मकांड का समन्वय: यज्ञ की पुनर्व्याख्या

उपनिषदों ने वैदिक कर्मकांड, विशेषकर यज्ञ की अवधारणा में एक क्रांतिकारी दार्शनिक परिवर्तन किया। उन्होंने यज्ञ के बाहरी स्वरूप को बनाए रखते हुए उसके अर्थ को आंतरिक और प्रतीकात्मक बना दिया। बाहरी अग्निहोत्र, जिसमें अग्नि में भौतिक आहुतियाँ दी जाती थीं, को 'प्राणाग्निहोत्र' जैसे आंतरिक यज्ञों में रूपांतरित कर दिया गया, जहाँ जीवन की प्रक्रियाएँ स्वयं एक यज्ञ बन जाती हैं। इस नई व्याख्या के अनुसार, श्वास लेना, भोजन करना, और यहाँ तक कि संपूर्ण जीवन ही एक यज्ञ है।

इस पुनर्व्याख्या में, सच्चा यज्ञ अपनी इच्छाओं, अहंकार और अज्ञान को ज्ञान की अग्नि में समर्पित करना है। यह दृष्टिकोण धर्म के कर्मकांडीय पहलू को ज्ञान के अंतिम लक्ष्य के साथ एकीकृत करता है। यह दर्शाता है कि सही ढंग से किया गया कर्म (धर्म) ज्ञान का विरोधी नहीं, बल्कि उसका मार्ग प्रशस्त करता है। इस प्रकार, उपनिषद कर्म और ज्ञान के बीच एक सेतु का निर्माण करते हैं, जहाँ धर्म उस सेतु की आधारशिला है।

धर्म संकट: नैतिक दुविधाओं का विश्लेषण

उपनिषदों और विशेष रूप से महाभारत जैसे परवर्ती ग्रंथों में 'धर्म संकट' की अवधारणा का गहन अन्वेषण किया गया है। धर्म संकट वह नैतिक दुविधा है जहाँ एक व्यक्ति के विभिन्न कर्तव्य परस्पर विरोधी प्रतीत होते हैं, और किसी एक धर्म का पालन करने से दूसरे का उल्लंघन होता है।

उदाहरण और विश्लेषण:

1. **युधिष्ठिर का अर्धसत्य:** महाभारत युद्ध के दौरान, द्रोणाचार्य को हराने के लिए कृष्ण युधिष्ठिर को यह कहने के लिए प्रेरित करते हैं कि 'अश्वत्थामा मारा गया'। युधिष्ठिर, जो सत्य के प्रति अपनी निष्ठा के लिए जाने जाते हैं, एक गहन धर्म संकट में पड़ जाते हैं। वे अंततः कहते हैं, "अश्वत्थामा हतः, नरो वा कुञ्जरो वा" (अश्वत्थामा मारा गया, नर या हाथी), जहाँ 'कुञ्जरः' (हाथी) शब्द को वे धीरे से कहते हैं।(महाभारत, द्रोण पर्व, अध्याय १९१.५५) यह घटना साधारण धर्म (सार्वभौमिक नैतिकता, जैसे सत्य बोलना) और विशेष धर्म (स्वधर्म, जैसे युद्ध जीतना और धर्म की स्थापना करना) के बीच के संघर्ष को उजागर करती है।
2. **भीष्म की प्रतिज्ञा:** भीष्म की आजीवन ब्रह्मचर्य और हस्तिनापुर के सिंहासन की रक्षा करने की प्रतिज्ञा उनके लिए एक स्थायी धर्म संकट बन गई। जब सभा में द्रौपदी का अपमान हो रहा था, तो उनका राजधर्म (निर्दोष की रक्षा करना) और उनकी व्यक्तिगत प्रतिज्ञा (सिंहासन के प्रति वफादारी) के बीच टकराव हुआ।(महाभारत, सभा पर्व, अध्याय ६७)

ये उदाहरण दर्शाते हैं कि औपनिषदिक और महाकाव्य परंपरा में धर्म को नियमों का एक कठोर और अपरिवर्तनीय सेट नहीं माना गया है। कहा गया है कि “जहाँ झूठ भी सत्य का काम करे (किसी प्राणी को संकट से बचावे) अथवा सत्य ही झूठ बन जाए (किसी के जीवन को संकट मे डाल दे); ऐसे अवसरों पर सत्य नही बोलना चाहिये। वहाँ झूठ बोलना ही उचित है।” (महाभारत शान्तिपर्व १०९.५) इसलिए धर्म के पालन के लिए विवेक (बुद्धि) और संदर्भ की गहरी समझ की आवश्यकता होती है। धर्म-संकट व्यक्ति को एक निष्क्रिय नियम-अनुयायी से एक सक्रिय नैतिक कर्ता में बदल देता है। इन दुविधाओं को हल करने के लिए, व्यक्ति को नियमों के पीछे के गहरे सिद्धांत - यानी, ब्रह्मांडीय व्यवस्था (ऋत) और परम कल्याण (श्रेयस्) - पर विचार करना पड़ता है। यह नैतिक परिपक्वता की प्रक्रिया है, जो आत्म-ज्ञान के लिए महत्वपूर्ण है। इस प्रकार, धर्म-संकट एक परीक्षा है जो व्यक्ति को सतही नैतिकता से गहन आध्यात्मिक समझ की ओर

लेके जाती है।

निष्कर्ष

उपनिषदों में धर्म की अवधारणा एक गहन और बहुआयामी दार्शनिक सिद्धांत के रूप में उभरती है, जो वैदिक चिंतन के कर्मकांडीय स्वरूप से ज्ञानकांड की ओर एक महत्वपूर्ण विकास को दर्शाती है। यह केवल नैतिक नियमों या सामाजिक कर्तव्यों का एक संग्रह मात्र नहीं है, बल्कि एक गतिशील और सार्वभौमिक सिद्धांत है जो व्यक्ति को उसके वास्तविक स्वरूप (आत्मन्) और परम सत्य (ब्रह्मन्) के साथ संरेखित करता है।

उपनिषदिक धर्म का सार: उपनिषदों में धर्म की यात्रा ब्रह्मांडीय व्यवस्था (ऋत) से शुरू होती है और व्यक्तिगत नैतिक आचरण (स्वधर्म) तक फैली हुई है। बृहदारण्यक उपनिषद् इसे 'सत्य' और 'क्षत्र की भी शक्ति' कहकर सर्वोच्च स्थान देता है, यह स्थापित करते हुए कि सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था भी एक उच्चतर नैतिक कानून के अधीन है। छान्दोग्य उपनिषद् धर्म को यज्ञ, अध्ययन और दान जैसे सामाजिक कर्तव्यों के रूप में परिभाषित करता है, लेकिन स्पष्ट करता है कि ये कर्तव्य केवल पुण्य लोकों तक ले जाते हैं, जबकि अमृतत्व (मोक्ष) केवल ब्रह्म-ज्ञान से ही संभव है। तैत्तिरीय उपनिषद् इसे 'सत्यं वद, धर्मं चर' के माध्यम से एक व्यावहारिक आचार संहिता के रूप में प्रस्तुत करता है, जिसका उद्देश्य चित्त शुद्धि है। वहीं, कठोपनिषद् धर्म को 'श्रेयस्' (कल्याणकारी) के मार्ग के रूप में चित्रित करता है, जिसे बुद्धिमान व्यक्ति 'प्रेयस्' (तात्कालिक सुख) के ऊपर चुनता है।

धर्म और मोक्ष का अटूट संबंध: उपनिषदों का अंतिम लक्ष्य मोक्ष है, और धर्म इस लक्ष्य की प्राप्ति का एक अनिवार्य और अपरिहार्य साधन है। धर्म का पालन - जिसमें नैतिक जीवन, अपने स्वधर्म का निष्काम भाव से निर्वहन, और यज्ञ की आंतरिक साधना शामिल है - मन को शुद्ध करता है, अहंकार को क्षीण करता है, और अज्ञान को दूर करता है। यह प्रक्रिया साधक को उस आध्यात्मिक परिपक्वता और मानसिक स्थिरता प्रदान करती है जो ब्रह्म-ज्ञान को ग्रहण करने के लिए आवश्यक है। इस प्रकार, धर्म और मोक्ष के बीच साधन और साध्य का एक अटूट संबंध है; धर्म वह नींव है जिस पर मोक्ष का भवन खड़ा होता है।

समकालीन प्रासंगिकता: उपनिषदों का धर्म-दर्शन आज के युग में भी अत्यंत प्रासंगिक है। यह व्यक्तिगत जिम्मेदारी, नैतिक नेतृत्व और आध्यात्मिक विकास के लिए एक कालातीत रूपरेखा प्रदान करता है। 'धर्म संकट' की अवधारणा हमें सिखाती है कि नैतिकता नियमों का अंधानुकरण नहीं, बल्कि विवेकपूर्ण निर्णय लेने की प्रक्रिया है। इसके अलावा, उपनिषदों में निहित प्रकृति के प्रति सम्मान और सभी प्राणियों की परस्पर निर्भरता का सिद्धांत एक 'पारिस्थितिक धर्म' (Ecological Dharma) की नींव रखता है, जो आज के पर्यावरणीय संकटों के लिए एक महत्वपूर्ण अंतर्दृष्टि प्रदान करता है। स्वामी विवेकानंद, स्वामी करपात्री महाराज और स्वामी अखंडानंद सरस्वती जैसे आधुनिक विचारकों ने उपनिषदों के इन्हीं सार्वभौमिक सिद्धांतों की पुनर्व्याख्या करके उनकी समकालीन प्रासंगिकता को और भी सशक्त रूप से स्थापित किया है।

अंततः, उपनिषद धर्म को एक ऐसे समग्र मार्ग के रूप में प्रस्तुत करते हैं जो जीवन के सांसारिक और आध्यात्मिक पहलुओं को एकीकृत करता है। यह सिखाता है कि सही ढंग से जीना, अपने कर्तव्यों का निर्वहन करना और नैतिक मूल्यों को बनाए रखना केवल सामाजिक सद्भाव के लिए ही नहीं, बल्कि व्यक्ति की अपनी उच्चतम क्षमता - यानी आत्म-साक्षात्कार और परम मुक्ति - को प्राप्त करने के लिए भी आवश्यक है।

सहायक ग्रंथ सूची

- शंकराचार्य, आदि, ईशादि नौ उपनिषद् शांकरभाष्यर्थ, गीता प्रेस, गोरखपुर, २०१९
- शंकराचार्य, आदि, श्रीमद्भगवद्गीता शांकरभाष्य, गीता प्रेस, गोरखपुर, २०१३
- उपनिषद् – अंक, गीता प्रेस, गोरखपुर, २०१९
- वेदव्यास, महर्षि, महाभारत, गीता प्रेस, गोरखपुर, २०२०
- करपात्री, स्वामी, धर्ममीमांसा, स्वस्तिप्रकाशनसंस्थान, पुरी, २०१८
- योगीन्द्र, सदानन्द, वेदान्त सार, रामकृष्ण मठ, नागपुर, २०२१
- विवेकानंद, स्वामी, विवेकानंद साहित्य, अद्वैत आश्रम, कोलकाता, २०१५
- निश्चलानंद, स्वामी, धर्मदर्शन, स्वस्तिप्रकाशनसंस्थान, पुरी, २०१८
- रामतीर्थ, स्वामी, व्यवहारिक वेदान्त, स्वामी रामतीर्थ प्रतिष्ठान, लखनऊ, २०१०
- करपात्री, स्वामी, विचार पीयूष, वेदशास्त्रानुसन्धान केन्द्र, वाराणसी
- रानाडे, रामचन्द्र दत्तात्रेय, उपनिषद-दर्शन का रचनात्मक सर्वेक्षण, राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर
- सरस्वती, स्वामी चिदानंद, अध्यात्म पथ प्रदर्शक, गीता प्रेस, गोरखपुर, २०१८
- सरस्वती, स्वामी अखण्डानन्द, व्यवहार और परमार्थ, सत्साहित्य प्रकाशन ट्रस्ट, बंबई, २०१५
- सरस्वती, स्वामी अखण्डानन्द, वेदान्त बोध, सत्साहित्य प्रकाशन ट्रस्ट, बंबई, २०२२
- तिवारी, रामानंद, श्री शंकराचार्य का आचार दर्शन, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, १९८८
- शर्मा, चन्द्रधर, भारतीय दर्शन – आलोचन और अनुशीलन, मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली, २०२२
- सिन्हा, हरेंद्र प्रसाद, धर्म दर्शन की रूपरेखा, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, २००८
- राधाकृष्णन, सर्वपल्ली, भारतीय दर्शन (खंड १-२), राजपाल & सन्स, दिल्ली, २०१५